

‘समालोचना-खण्ड’

(१)

प्रश्न १:—हिन्दी साहित्य में सतसई की परम्परा और उसमें विकास का निर्देश करते हुये, उसमें बिहारी का स्थान निर्धारित कीजिये ?

(१९५४, आवश्यक)

इस ‘शृङ्गार-विरोधी’ काल में भी बिहारी सतसई का जो इतना अधिक मनन एवं अनुशीलन हुआ, तथा साहित्य में जिसका प्रथक ही एक भण्डार निर्मित होकर अपनी उच्चता एवं विशालता की ओर, प्रस्तर स्तम्भ की भाँति, एक दिशा निर्देश कर रहा है, इसका एक रहस्य है। वह यह है कि इसकी रचना मुक्तक रूप में हुई है, जोकि समय की अवधि में परिष्कृत होता हुआ काल परिपाक से लोक रुचि के साहाय्य को प्राप्त करके अपनी तरुणाई को प्राप्त हुआ है। सर्वप्रथम हमें इसकी परम्परा के स्रोत एवं विकास का परिशीलन करना है।

यद्यपि ‘बिहारी सतसई’ के रूप-विधान की भाँति संस्कृत-साहित्य में अधिक ग्रन्थ-रचना नहीं हुई है परन्तु इसके भावों के तुल्य ही मुक्तक के रूप में प्रचुर-सामग्री भरी पड़ी है, जोकि स्फुट रूप में भी अपना साहित्य में मूल्य रखती है। स्तोत्र एवं भक्ति के ग्रन्थ भी इसी की परम्परा का स्रोत समझे जा सकते हैं। सर्वप्रथम प्राकृत भाषा में ‘हाल’ कवि ने ‘गाथासप्तसती’ की रचना एक निश्चित संख्या में मुक्तक छन्दों में की। इसकी रचना के पश्चात् तो सामयिक कवियों ने शतक तथा सप्तसती नाम से कई रचनायें कीं। परिणाम स्वरूप संस्कृत में अमरुक का ‘अमरुक शतक’ तथा गोवर्धन की ‘आर्या-सप्तशती’ साहित्य देवता को अर्पित की गईं। इनका वृष्य-विषय शृङ्गार होने के कारण ये मुक्तक रूप में भी लोक रुचि को आकर्षित करते रहे हैं तथा शास्त्रीय दृष्टि से

भी इनमें रस की पूर्ण सामग्री उपलब्ध होती रही है। आगे चलकर अपभ्रंश में भी इस प्रकार की रचनाओं की कमी नहीं रही है। 'दूहा' या 'दोहा' छन्द की रचना भी प्राकृत काल में प्रचलित रही।

विहारी के समक्ष संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश की रचनाओं के अतिरिक्त रहीम-सतसई एवं तुलसी-सतसई भी रही हैं। यद्यपि रहीम की सतसई के रूप में कोई रचना उपलब्ध तो नहीं है, हाँ स्फुट दोहे अवश्य तीनसौ भी संख्या के लगभग हैं। ये दोहे अधिकांश में नीति सम्बन्धी हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि उन्होंने शृङ्गारी दोहे लिखे ही नहीं थे। लिखे अवश्य थे, यहाँ तक कि विहारी के दोहों के टक्कर के, परन्तु नीति सम्बन्धी दोहे व्यावहारिक एवं प्रवचन-पट्टु होने के कारण जन-समुदाय की जिह्वा पर विराज गये एवं यह अनुमान है कि अधिकांश शृङ्गारी दोहे समय की दरार में समाहित होगये होंगे। जो प्राप्य हैं वे अत्यधिक सुगठित एवं मार्मिक हैं। इनके सम्पूर्ण दोहे रहीम-दोहावली, नगर-शोभा, शृङ्गार-सोरठ एवं बरवै-नायिका भेद में संग्रहीत हैं। शृङ्गार-सौरठ के एक सोरठा की कल्पना एवं मार्मिकता में अवगाहन कीजिये:—

दीपक हिये छिपाय, नवल बधू घर लै चली।
कर-विहीन पछिताय, कुच लखि निज सीसै धुनै॥

कितनी सरल भाषा में कितना भाव भरा दिया है। कोई स्वकीया नायिका, तेज वायु के प्रवहवान होने के कारण स्वांचलान्तर्गत प्रज्ज्वलित दीप को लिये जा रही है। दीप उरोजों के नैकट्य का अनुभव करते हुये भी कर-विहीन होने के कारण उस अपूर्व सुख से वंचित होने पर अपना सिर धुन रहा है। लौ का मन्द २ हिलना कवि ने दीप का 'सिर धुनता' बताया है। कितना आकर्षण है। इसी प्रकार निम्न दोहा भी:—

नैन सलोने अधर मधु, कहि रहीम घटि कौन।
मीठौ भावै लोन पर, अह मीठे पर लौन॥

रहीम दोहावली ११२॥

रहीम के पश्चात् तुलसी-सतसई की गणना की जाती है। परन्तु विद्वानवर्ग इसे तुलसीकृत नहीं मानते। हाँ दोहावली में कई सौ दोहे हैं, जो नीति और भक्ति परक ही हैं।

... बिहारी-सतसई के निमित हो जाने पर तो सतसई परम्परा ने अपना प्रथक ही पथ निर्धारित कर लिया तथा अनेकानेक कवियों ने इसको अपना आलोच्य एवं काव्य का विषय चुना। यहाँ तक कि बिहारी को लेकर हिन्दी-जगत में एक तूफान खड़ा होगया। विक्रम-सतसई, शृङ्गार-सतसई, मतिराम-सतसई, वृन्द-सतसई आदि आदि सतसइयाँ साहित्य-जगत में आईं। क्रम से तो बिहारी लाल जी हिन्दी के तीसरे सतसईकार हैं, परन्तु आर्यासप्तशती, गाथासप्तशती की पद्धति पर यह प्रथम सतसई ही ठहरती है। जिस प्रकार हिन्दी की इतर सतसइयों में शृङ्गार निरूपण है। उसी प्रकार लोकप्रियता और शृङ्गार-निरूपण की दृष्टि से बिहारी भी प्रसिद्धि को प्राप्त हुये हैं। आगे चलकर इन मुक्तक छन्दों की संख्या सातसौ तक ही वंधी नहीं रह सकी। यह संख्या हजार और ग्यारह सौ तक पहुँची। वृन्द के पश्चात् 'रस-निधि' ने 'रतन-हजारा' लिख डाला। इसी समय में उक्त 'विक्रम-सतसई' चरखारी रियारात (बुन्देलखण्ड) के विक्रमादित्य द्वारा रची गई। यह रचना सरस होने के अतिरिक्त सतसई परम्परा को भी आगे बढ़ाती है।

आधुनिक काल में भी यह परम्परा उपराम को प्राप्त नहीं हुई। बरम् उसी वेग से अप्रतिहत रूप में चलती रही। हाँ भाव कुछ समय के अनुसार परिवर्तित हुए। श्री वियोगी हरि जी ने हिन्दी-साहित्य को अपनी 'बीरसतसई' देकर अनुपम-निधि प्रदान की है। इसमें आधुनिक 'नाजुकता' पर तीखा व्यंग्य है। साथ ही साथ देश-बीरों एवं कवियों पर प्रशंसात्मक दोहों की रचना भी की है। भाषा सरल एवं सुगठित है। सुकुमारता पर व्यंग्य करते हुये आपका निम्न दोहा बहुत प्रसिद्ध है—

कै चढ़ि लै असिधार पै कै बन लै सुकुमार।

दुइ तुरंग पर एक संग भयो कौन असावार॥

इसका दूसरा उदाहरण भी रीतिकालीन कोमलता के प्रति व्यंग्य ही है जिसमें कि नविका के ओप्ट इतने कोमल दिखाये गये हैं कि अंगूर की भिली भी गड़गड़ जाती है—

क्यों करि डाइन डाकिनी कड़कड़ हाड़ चबाति ।

इततौ भिली अंगूर की ओठनु गड़ि गड़ि जाति ॥

इस प्रकार डिगल के कवि सूर्यमल की 'वीर सतसई' की भाँति हरि जी की सतसई भी महत्वपूर्ण रचना है। इसकी एक प्रमुख विशेषता यह है कि ब्रजभाषा जो अवतक शृङ्खार के लिये ही उपयुक्त समझी जाती थी, वीर रस के लिये भी उपयुक्त निष्ठ हुई। 'हरि जी' को इस पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक भी प्राप्त हुआ था। इसके पश्चात श्री दुलारे लाल जी की 'दुलारे-दोहावली' भी विहारी के अनुकरण पर रची गई है। इस पर उन्हें 'देव पुरस्कार' प्राप्त हुआ। यह भी एक प्रकार से सतसई ही है। अब तो विभिन्न विषयों पर सतसईयाँ लिखी गई हैं। जैसे रामेश्वर-करुण की 'करुण सतसई' तथा तुलसीराम शर्मा की 'श्याम सतसई' प्रकाशित हुई हैं। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने देवकी-नन्दन जी की 'नीसई' तथा अन्य किसी कवि की 'ग्यारह सई' का भी उल्लेख किया है।

२१/१५३
८०१

सतसई-साहित्य में शब्द प्रश्न आता है विहारी सतसई के स्थान का।

इसमें निरपेक्ष-दृष्टि से यदि मनन किया जाय तो हम पायेंगे कि विहारी-सतसई ही वह धुरी है जिसके चारों ओर सतसई-साहित्य परिभ्रमण कर रहा है—फिर भी 'विहारी-सतसई' अपनी भाव-विशालता एवं गंभीरता से अपने स्थान पर अडिग है। क्या भाषा, क्या भाव, क्या अलंकार, क्या दोहों का सुगठित शरीर, क्या अर्ध-गाम्भीर्य, सभी में विहारी अपनी सानी नहीं रखते। हिन्दी-साहित्य में सतसईयों का विषय भक्ति, नीति एवं शृङ्खार रहा है। विहारी-सतसई यद्यपि शृङ्खार प्रधान रचना है फिर भी भक्ति एवं नीति विषयक दोहों की उसमें कमी नहीं है। उदाहरण अलंकार द्वारा विहारी ने भगवान् को न समझे पर कहा है कि अरे

मनुष्य जिस प्रभु के दिये ज्ञान से तूने सम्पूर्ण संसार को जाना उसको तू उसी प्रकार नहीं समझता है जिस प्रकार जिन आँखों से संसार देखा जाता है परन्तु वे स्वयं नहीं देखी जातीं । इसके अतिरिक्त भक्ति में वे शुद्धता को स्थान देते थे, आडम्बर से उन्हें चिढ़ थी—

जपमाला छापा तिलक सरै न एकौ काम ।

मन काँचे नाचे विरथा साँचै राँचै राम ॥

और भीः—भजन कह्यौ तासों भज्यौ, भज्यौ न एकौ बार ।

दूर भजन जासों कह्यौ, सो तू भज्यौ गँवार ॥

इसी प्रकार उनके नीति सम्बन्धी सुन्दर दोहे भी समाज में अत्यधिक प्रचलित हैं । परन्तु शृंगार का क्षेत्र उनका अपना है । उनकी प्रतिभा अलौकिक है । दोहे जैसे छोटे छन्द में अपूर्व भावों को समाहित किया है । इसी आधार पर उनके दोहों की पावता का स्थान 'गागर में सागर' की उपमा से विख्यात है । विहारी के दोहों के भाव मतिराम, देव, रसखान आदि कवियों ने लिये तथा उन दोहों पर ही सर्वैये, कवित्त छप्पय आदि छन्द गये, फिर भी वे इतना भाव नहीं भर सके जितना कि विहारी एक दोहे में अर्थात् दो पंक्तियों के अन्तर्गत ला सके हैं । यह विहारी की अपनी विशेषता है । इनके दोहों की लोकप्रियता का विशेष कारण यह है कि आपने दोहों में दोहा-काव्य की सभी विशेषतायें चरमसीमा तक पहुँचा दी है । रहीम ने दोहा-छन्द की विशेषता निम्न दोहे में बताई है :—

दीरघ दोहा अरथ के आखर थोरे आहिं ।

जिमि रहीम नट कुण्डली सिमिटि कूदि चलिजाहिं ।

"एक दोहे के अल्प शब्दों में उतना ही अर्थ निहित रहता है जितना कि एक नट अपने सम्पूर्ण शरीर को सन्तुलित करते हुये संकुचित कर एक सकरे स्थान से निकालने में समर्थ होता है ।" यह गुण विहारी के दोहों में सर्वाधिक है इसके दो तीन उदाहरण देकर स्पष्ट किया जा-

सकता है। निम्न दोहे में प्रेम-पथ की सम्पूर्ण जीवन-कहानी पढ़कर पाठक रस मन हो जाता है:—

दृग उरभत दूटत कुड़ब, जुरत चतुर चित श्रीति ।

परति गांठि दुरजन हिये, दई नई यह रीति ॥

प्रेम की यह अनौखी रीति है कि उलझती तो आँखें हैं परन्तु दूटता है कुड़म्ब। अर्थात् प्रेम-पथ पर, आँखें चार होने पर प्रेमी, प्रिय की तन्मयता में, पारिवारिक एवं सामाजिक बन्धनों को तोड़ डालता है। प्रिय और प्रेमी, प्रेम सूत्र से अपना गठबन्धन करते हैं, परन्तु प्रतिक्रिया स्वरूप दुर्जन व्यक्तियों के हृदय में ईर्ष्या तथा डाह की घुन्डी बन जाती है जो उन्हें चबाइयों (माइल-पन, इधर की उधर मिलाना) के लिये प्रेरित करती रहती है। अर्थात् उलझता कुछ है, दूटता कुछ है, गठबन्धन कहीं होता है, गाँठ कहीं पड़ती है। अतः यहाँ विलक्षणता हुई। यहाँ कहीं कहीं बिहारी-सतसई के दोहे उद्दू की गजलों की भाँति हैं जिनके कि भाव चाहे उच्च न हों परन्तु उनकी अभिव्यक्ति इतनी मर्मस्पर्शी होती है कि श्रोता के हृदय की कलिका उत्फुल्ल हो जाती है। भाषा, भाव एवं उक्ति, वैचित्र्य पर वह रीझ उठता है। बिहारी के अतिरिक्त इस प्रकार की शक्ति अन्य कवियों में देखने को नहीं मिलती। निम्न दोहे में बिहारी ने योग सम्बन्धी सिद्धान्त की पूर्ति शृङ्गार में की है:—

जोग जुगति सिखिये सबै, मनो महामुनि भैन ।

चाहत पिय अद्वैतता, कानन-सेवत नैन ॥

नायिका के नेत्रों की विशालता का 'इलेष' के आधार पर वर्णन है। जिस प्रकार एक साधक ब्रह्मकी अद्वैतता के लिये अर्थात् ब्रह्मानन्द में तल्लीन होने के लिये कानन (ब्रन) का वास करता है उसी प्रकार प्रिय-दर्शन के लिये नायिका के नेत्र सदैव कानों का सेवन करते हैं अर्थात् कानों तक लम्बाय-मान हैं जोग, अद्वैतता तथा कानन में इलेष है। इस प्रकार के दोहों में भाषा

कवि का अनुगमन करती सी दिखाई देती है। इसी प्रकार के सुगठित शरीर वाला निम्न दोहा भी है:—

सायक सम मायक नयन, रँगे त्रिविध रँग गात ।
भखौ बिलखि दुरिजात जल, लखि जलजात लजात ॥

अर्थ-गाम्भीर्य के अतिरिक्त अब अन्य कवियों से तुलना करते हुये बिहारी का स्थान हिन्दी-साहित्य में क्या है, इसका विवेचन करेंगे। इस तुलना में हमारा तात्पर्य किसी कवि को किसी कवि से हीन या श्रेष्ठ सिद्ध करने का नहीं है। श्वङ्गार-काल अपने आदर्शों के लिये छढ़िवादी रहा है। प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से तो यह पूर्णरूपेण रूढ़िवादी है। बिहारी ने प्रकृति-चित्रण किया तो है परन्तु उनका चित्रण प्रभावोत्पादक ही है रूपात्मक नहीं। इस काल में रूपात्मक प्रकृति-चित्रण है तो केवल सेनापति का। बिहारी का प्रकृति-चित्रण किसी रूप या व्यापार के एकाङ्गी प्रभाव को ध्वनित मात्र करता है, तो सेनापति उसका व्योरेवार वर्णन करते हैं। ग्रीष्म ऋतु के ताप का प्रभाव बिहारी ने निम्न दोहे में चित्रित किया है:—

कहलाने एकत बसत अहि मथूर मृग बाघ ।
जगत तपोवन सौ कियौ दीरघ दाघ निदाघ ॥

ग्रीष्म ऋतु में सूर्य अपनी प्रचण्ड अग्नि को उगलता है जिससे चमुन्धरा देवी की त्वचा भी झुलस जाती है एवं प्राणिमात्र व्याकुल हो जाता है। परन्तु बिहारी ने इसका उल्लेख न करते हुये उसके ताप की व्यापकता का जो प्रभाव बन के प्राणियों पर डाला है। उसका उल्लेख मिलता है। क्योंकि ताप की प्रचण्डता के कारण बन के जीव अपनी सुधि-बुधि भूल गये हैं। परिणाम स्वरूप वे अपनी स्वाभाविक शत्रुता का भी ध्यान विस्मृत कर बैठे हैं (तपोवन जो ठहरा) पर सेनापति प्रकृति के रूप का चित्रण कर ताप का वर्णन करते हैं जिसका आभास लक्षणात्मक प्रयोगों से ही सम्भव है:—

वृष को तरनि तेज सहस्रौ किरनकरि
ज्वालन के जाल विकराल बरसत हैं ॥
तचति धरनि, जग जरत भरनि सीरी
छाँह को पकरि पंथी पंछी विरमत हैं ॥
सेनापति नैक दुपहरी के ढरत होत ।
घमका विषम ज्यौं न पात खरखत हैं ॥
मेरे जान पौनौं सीरी ठौर कौं पकरि कोनौं
धरी एक बैठि कहुँ घामैं बितवत हैं ॥

दोनों ही कवियों ने प्रकृति को भावों की पृष्ठभूमि में ही प्रस्तुत किया, है विशेषतः विरह की स्थिति में। 'जारत आवत जगत को पावस प्रथम पयोद' में बिहारी की वियोगिनी को चतुर्मासि का प्रथम जलद संसार को जलाता हुआ आता प्रतीत होता है। तो सेनापति की प्रोषित-पतिका पूस की लम्बी २ रातों में विरहाग्नि में तापित होती है। बिहारी दोहों में ही रूपक का चित्रण करके चित्र उपस्थित करते हैं तो सेनापति उत्प्रेक्षा को प्रिय समझकर चित्रण में रूप की संभावना करते हैं। हाँ बिहारी की कल्पना मर्मस्थल को भेद देने वाली होती है। उन्होंने सेनापति की भाँति ग्रीष्म को वर्षा या हेमन्त क्रृतु बनाने की कलाबाजी पेश नहीं की है।

सेनापति के पश्चात् मतिराम आते हैं जिन्होंने बिहारी-सतसई के अनुकरण पर ही अपनी सतसई की रचना की। परन्तु इनमें बह चुस्ती, गठन, वाक्य-वैदाध्य एवं भाव-गंभीरता कहाँ जो बिहारी में मिलती है। इस की सत्यता के लिये दोनों के समान-भाव और अर्थ वाले दोहों को लिया जा सकता है। कुछ विद्वानों का तो यहाँ तक मत है कि 'मतिराम ने सम्पूर्ण बिहारी सतसई का गंभीर मन्थन किया था।' यदि यह भाव साम्य आकस्मिक ही है तो भी दोनों के दोहों को देखकर बिहारी के दोहे प्रथम ही 'चुनै जौहरी हीर' की भाँति तीक्षण एवं खरे भावों से परिपूर्ण गंभीर अर्थ लेकर समय के मञ्च पर अधिष्ठित हैं।

बिहारी का चित्रण सजीव और गतिशील है। नायक-नायिका आँख मिचौनी खेल रहे हैं। नायक ने पीछे से आकर नायिका के हृग वृन्द कर लिये हैं। नायिका नायक के हाथ स्पर्श से ही(सात्त्विक भाव होने के कारण) उसको पहचान गई। उदाहरणार्थ इस भाव को बिहारी और मतिराम ने इस प्रकार प्रकट किया है—

हृग मिहचत मृगलोचनी, भरयो उलटि भुज वाथ ।

जान गई तिय नाथ के हाथ परस ही हाथ ॥
(बिहारी)

खेलत चोर मिहीचिनी परे प्रेम पहचानि ।

जानी प्रगटत परसतैं, तिय लोचन पियपानि ॥

(मतिराम)

मतिराम के दोहे में 'परे प्रेम पहचान' की पूर्ति व्यर्थ सी प्रतीत होती है। इसके अरिरिक्त रामसहाय की 'शृंगार सतसई' से तुलना की जाय तो भी असल और नकल का पता तुरन्त हो जाता है। उदाहरण—

लिखन बैठि जाकी सबी गहि गहि गरब गर्लर ।

भये न केते जगत के चतुर चितरे कूर ॥

(बिहारी)

सगरब गरब खिचै सदा चतुर चितरे आय ।

पर बाकी बांकी अदा नैकु न खींची जाय ॥

(रामसहाय)

इस प्रकार बिहारी की भाषा की गहनता और मार्मिकता रामसहाय के दोहों में नहीं आपाई है।

कवि वृन्द ने रहीम के नीति सम्बधी दोहों की भाँति ही अपना काव्य-सृजन किया है। अतः लोक रुचि के अनुकूल न होने के कारण लोक-प्रियता नहीं मिल सकी। बिहारी और देव में कौन बढ़कर है इसकी पुष्टि के लिये आलोचकों में इतना विरोध बढ़ा कि पर्यासिह शर्मा और लाल भगवान दीन तो बिहारी का विरोध करने या देव से हीन छहराने के

कारण मिश्रबन्धुओं के ही विरोधी बन वैठे । 'दीन'जी का तो विचार ही यह है कि मिश्रबन्धु विहारी के दोहों का ठीक अर्थ ही नहीं समझ पाये । अतः उन्होंने उनको मध्यम ठहराने का प्रयत्न किया है । निष्पक्ष हृषि से देखा जाये तो दोनों का अपना २ पृथक् स्थान है । हाँ विहारी काव्य-रीति के अच्छे मर्मज्ञ थे । मावपक्ष और कला पक्ष दोनों की हृषि से उनके दोहे उत्कृष्ट हैं । जिस प्रकार शान्त रस में तुलसी और वीर रस में भूषण प्रमुख माने जाते हैं उसी प्रकार शृंगार में विहारी का प्रमुख स्थान है ।

परम्परा से सम्बन्धित सम्पूर्ण कवियों से तुलना के पश्चात् जब सतसीया साहित्य पर ध्यान देते हैं तो हमें तुलसी कृत रामायण के अतिरिक्त हिन्दी में ऐसी कोई पुस्तक नहीं दिखाई देनी जिसका विहारी सतसई के बराबर अध्ययन, मनन और अनुशोलन हुआ हो । विश्व की लगभग सभी भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है । हिन्दी में इसकी अनेक टीकायें हैं । कुछ टीकायें तो पद्यात्मक हैं जिन में दोहों का अर्थ वर्णन करने के लिये कुण्डलिया, कवित्त और सर्वैयों का आशय लेना पड़ा है । इन दोहों के वैद्यक-परक-अर्थ और शांत रस-परक अर्थ भी विद्वानों ने निकाले हैं । कुछ समय तक सतसई की टीकायें लिखना एक प्रकार से फैशन एवं विद्वता को कसौटी बन गया था । शब्द से पहली पद्य-टीका 'कृष्णलाल' की है । दूसरी टीका विजय गढ़ के मान कवि या मानसिंह की है । तीसरी मुख्य टीका अनवर-चन्द्रिका है । इसके अतिरिक्त सुरति मिश्र की अमरचन्द्रिका, हरिचरण दास की हरिप्रकाश टीका, ठाकुर कवि की 'देवकीनन्दन टीका,' लल्लू जाल जी की लाल-चन्द्रिका आदि प्रसिद्ध टीकायें हैं । आधुनिक काल में भी, जबकि शृंगार का विरोधी यह काल माना जाता है, सतसई की आलोचना एवं पठन पाठन के दूसरे भाग में दोहों का भाष्य किया है । दूसरे 'दीन' जी की 'विहारी 'बोधिनी है' । तीसरी टीका 'रत्नाकर' जी की 'विहारी रत्नाकर' है ।

अन्य भाषाओं में गुजराती की टीका थी गविता नारायण कविकृत 'भावार्थ प्रकाशिका' है। अलबर की राज्य-सभा के समायद जोधी आनन्दी लाल शर्मा ने लगभग १८६५ के फारसी में 'सतसई' नामकी टीका लिखी। इस प्रकार हम देखते हैं कि सतसई-साहित्य का जितना मन्यन हुआ और हो रहा है उतना अन्य किसी काव्य का होना योहा सा कठिन प्रतीत होता है। सतसई के अतिरिक्त हिन्दी की किसी पुस्तक को मंस्कृत में अनुदित होने का सौभाग्य सम्भव है प्राप्त नहीं हुआ। पर्यामिह शर्मा ने 'बिहारी सतसई' को मक्खन की रोटी' ही समझते हैं और उनका कहना है कि 'इसे जिधर से भी तोड़ कर खाओ उधर ही से मधुर एवं सरस निकलती है।' विदेशी आलोचक जार्ज ग्रियर्सन ने तो इस की तथा इसके कवि की भूमि २.प्रशंसा की है। उन्हीं के शब्दों में :—

"I know nothing like his verse in any, European language."

बिहारी की प्रतिभा उनकी एक मात्र कृति 'सतसई' के आधार आँकी गई है। साहित्य-जगत में ऐसा कोई भी कलाकार नहीं है जो एवं ही कृति के आधार पर इतना प्रसिद्ध हो सका हो।

ग्रियर्सन के हृदय पर ही बिहारी का सिक्का बैठा हो ऐसी बात नहीं। साहित्य के मर्मज्ञ एफ० ई० के० नामक 'विद्वान' का कथन भी देखिये :—

"The work of Beharilal is a triumph of skill and of felicity in expression."

(A History of Hindi lit. By F.E. Key.)

Imperial Gazetteer में हिन्दी के केवल तीन ही कवियों की चर्चा है - तुलसी सूर और बिहारी।

अन्त में डा० हरवंश लाल शर्मा के शब्दों में “जिस कवि की कला से जनसाधारण से लेकर राजा महाराजा तक, सामान्य हिन्दी ज्ञान रखने वालों से लेकर संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डितों तक, ब्रज क्षेत्र से लेकर गुजराती, मराठी आदि प्रान्तीय भाषाओं के क्षेत्र तक देश से लेकर विदेश तक के आलोचकों को रस से आप्लावित किया हो वह कोई सामान्य सृष्टा नहीं हो सकता । निस्सन्देह बिहारी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ मुक्तकार हैं, तथा भारत के यशस्वी महाकवि और विश्व के आदरणीय कलाकार के रूप में सदैव याद किये जायेंगे ।” इस अवलोकन के पश्चात् हम कह सकते हैं कि बिहारी का स्थान सतसई परम्परा में एवं शृंगारी कवियों में ‘जल में तुम्ही की की भाँति’ सदैव ऊँचा उठा रहेगा । वह ‘कमलपुष्प की भाँति’ सबको आकर्षित करती रहेगी । और सहृदय शक्ति रसपान करके उसका परिशीलन करते ही रहेंगे ।

~~प्रश्न २:~~—जिस कवि में कल्पना को समाहार शक्ति के साथ २ भाषाओं समान-शक्ति जितनी अधिक होगी, उतना ही वह सुकक-रचना में सफल होगा ।’ अचार्य शुक्ल के इस उद्धरणको उदाहरणों द्वारा बिहारी के विषय में चरितार्थ कीजिये ?

१६५८. (अत्यावश्यक)

उत्तर—किसी भी कवि के लिये उसके यशःसौरभ में वृद्धि होने में दो बातें का होना आवश्यक है । प्रथम अनुभूति की मार्मिकता तथा अन्य अभिव्यक्ति की परिष्कृतता । प्राचीन ऐते के आलोचक तथा विद्वान अनुभूति को ही सब कुछ मान कर चले हैं । परन्तु अब अभिव्यक्ति को भी प्रमुखता मिली है । एक के बिना दूसरे का कोई महत्व प्रतीत नहीं होता । यदि भाव कविता-कामिनी के प्राण हैं तो भाषा शरीर ।

दोनों की अपने स्थान पर महत्वपूर्ण स्थिति है। बिना प्राण के अलंकृत शरीर भी शब्द मात्र ही है तथा बिना शरीर के प्राण का अस्तित्व भूत (प्रैत) मात्र ही रह जायगा। अतः इस आलोचना के युग में 'भाव अनूठे चाहिये, भाषा कैसी होय' वाली उक्ति उचित प्रतीत नहीं होती। इसके विरोधी कवि लोग अपनी शब्द-शक्ति से ही काव्य-शरीर निर्माण करने में लगे रहते हैं। उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहता कि हमारे निर्मित शरीर में प्राण भी है अथवा शब्द मात्र ही। पोप ने कहा है कि वातें तो पहले भी कही गईं हैं किन्तु उनकी अभिव्यञ्जना इतनी सुन्दर नहीं हुई है।' यही कारण है कि उसने अंग्रेजी काव्य को 'ईंटों के भाव-भवन' नहीं बरन् 'संगमरमर के प्रासाद' भेंट किये हैं। वह ऐसे शब्द लाता था कि जिससे भावाभि व्यक्ति स्वयमेव हो जाय। उसने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'समालोचना' निबन्ध में लिखा है — 'The sound must seem on echo to the sense' अतः सिद्ध हुआ कि काव्य-कला में शब्द-कला का महत्व विशेष है। शब्द-चयन, गुम्फन, सुव्यवस्था, संगीतात्मक-प्रभाव एवं अलंकारों की उपेक्षा की तो बात ही क्या है, प्रतिभासम्पन्न कवि तो सप्रयास इन विशेषताओं के अधिकाधिक सम्पादन में प्रयत्नशील रहते हैं। इसका विशेषार्थ यह भी है कि भाषा ही वह साधन या माध्यम है जो कवि के भावों वी अतिरिक्त भंकृति पर्यन्त एवं सहृदय के अन्तर सूत्र तक पहुँचाने में समर्थ होती है। अतः समर्थ कवि अपने भावोद्गारों को चुन-चुनकर ऐसे शब्दों में अभिव्यक्त करता है कि पाठक को तत्काल आकर्षित करले। शब्द-कला की यह विशेषता जिस भाषा में होगी वह साहित्य में गौरव पूर्ण पद पर ही आसीन होगी। ब्रजभाषा को तो इस माधुर्य-ऐश्वर्य ने ही उसे काव्यभाषा के गौरवपूर्ण पद पर अधिष्ठित किया था।

सफलता के इस आधार भूत सत्य पर यदि बिहारी की काव्य-कला की आलोचना की जाए तो हमें ज्ञात होगा कि उनकी भाषा प्रेषणीयता शब्द-संघटना से युक्त और यथोचित रूप से अलंकृत है। तथा 'सत्तमा'

में भावों के सौदर्य की पूर्ण रक्षा की है। अतः उनकी कविता का शर्म तो सुन्दर है ही आत्मा भी किसी प्रकार से हेय नहीं कही जासकती। विषय-नुनाव तो समय की परिस्थित से प्रादुर्भूत होने के कारण शृंगारी रहा है। फिर भी विहारी के प्रकाशन की रीति में रमणीयता है। विहारीलालजी तो अंगेजी-कवि कालरिज की काव्य-परिभाषा के अनुयायी है जिस के अनुसार कविता 'Best words in the best order' ही है। संस्कृत में भी भाषा के माधुर्य, ओज और प्रसाद तीन गुण माने जाते हैं। विहारी-सतसई में इन गुणों की प्रमुखता है। माधुर्य वह गुण है जिस के श्रवण से चित्त द्रवित हो (चित्तद्रवी-भावमयोह्लादो माधुर्यमुच्यते । सा० द०) इस गुण को लाने के लिये काव्य में 'ट' वर्ग का प्रयोग बचाया जाता है। इसी को ममट ने 'काव्य-प्रकाश' में 'आह्लादकत्वं माधुर्यं शृंगारे द्रुति कारणम्' कहा है। विहारी की भाषा (ब्रज) स्वभाव से कोमल है और उसपर भी शृंगार जैसे मधुर रस की अभिव्यक्ति जगत को रसमय करने की सामर्थ्य रखती है, तो भी माधुर्य, ओज, प्रसाद, आदि गुणों का समावेश सोने में सुहागे का कार्य करते हैं। माधुर्य का उदाहरण:—

अरुन वरन तरुनी चरन अंगुरा अति सुकुमार ।

चुवति सुरँग रँग-सी मनो चैपि विद्धियन के भार ॥

दोहे की श्रेष्ठता यह कि इसमें न तो दीर्घ समास है और न संयुक्त वर्ण। ट वंगीय अक्षरों का भी लोप है। ४१ व्यंजनों में से केवल पाँच में दीर्घ स्वरों का संयोग है शेष हस्त हैं। अनुनासिक और सामुस्वार वर्णों की प्रचुरता ने दोहे की सुकुमारता को 'तरुनी की अंगुरी' की सुकुमारता के स्तर तक ही नहीं पहुँचाया है वरम् अपनी काव्य-प्रतिभा संगीत के स्वरों को भरकर विद्धियों की शृंगारिक ध्वनि से भी (अभिसार के लिए जाती हुई नायिकाओं के विद्धियों से उत्पन्न तान स्वर, समध्वनि) होड़ लगाई है। पढ़कर चित्त में नायिका की योग्यता और अपने चित्त में माधुर्य का मनुभव होता है। भावपूर्व भासा का प्रेसा

सामंजस्य बिहारी जैसे कलाकारों का ही कार्य है । माधुर्य और प्रसाद युक्त इस दोहे में सामान्य पाठक भी रस का प्रसाद पा लेता है । यद्यपि ओज गुण शृंगार रस के अनुकूल नहीं पड़ता है क्योंकि उसमें वर्णों की कटु ध्वनि होना आवश्यक है, फिर भी सतसई में कहीं कहीं ओजप्रधान वर्णों की ध्वनि सुनाई पड़ती है ।

लटकि लटकि लटकत चलत, डटत, मुकुट की छाँह ।

चटक भर्यौ नट मिलिगयौ, अटक, भटक-बट माँह ॥
परन्तु ऐसे उदाहरण कम ही मिलते हैं । इसमें तो बिहारी ने टकार के दारुणघोष में नायिका के मिलन का मजा ही किरकिरा करा दिया है ।

गुण विवेचन के पश्चात् 'बिहारी-काव्य' की अन्य विशेषताओं पर हृषि डालें तो सर्वप्रथम हमारे समक्ष उनकी मुक्तक-काव्य रचना की विशेषता आती है । मुक्तक वह रचना है जो अपना अर्थ व्यक्त करने में स्वतः समर्थ हो एवं एक छंद का लगाव अन्य छन्द से पूर्वापर न हो । प्रबन्धकाव्य में तो नीरस छन्दों में भी कथाक्रम के कारण सरसता बनी रह सकती है परन्तु मुक्तक में यदि कवि अपनी कल्पना और प्रतिभा से सरसता नहीं ला सका तो रचना फीकी पड़ जायगी और सहृदयों को आकर्षित करने में असमर्थ सिद्ध होगी । नीति-कथन आदि के पद जब प्रबन्ध-काल में प्रयुक्त होते हैं तो प्रसंग के प्रवाह में वे भी सरस बन जाते हैं । परन्तु मुक्तक में वे नीरस ही रहेंगे । जैसे तुलसी का निम्न दोहा, दोहावली में कोई भी आकर्षण उत्पन्न नहीं करता परन्तु 'मानस' में प्रसंग-वश अपनी अपूर्व छटा बखेरता है । प्रसंग है जब रावण का भ्राता त्रिभीषण राम की शरण में आया तो उसने अपना पुर्ण समर्पण किया राम के द्वारा अपनाने के लिये । अनुनय-विनय की इसका प्रत्यक्ष चित्र उपस्थित हो जाता है :—

श्रवन सुजंस सुनि आयहुँ प्रभु भंजन भव भीर ।

त्राहि त्राहि आरत हरन सरन सुखद रघुवीर ॥

इसी प्रकार से कबीर, रहीम, वुन्द आदि की दोहावलियाँ सूक्ति मात्र ही

प्रतीत होती हैं परन्तु विहारी जीवन-चित्र अंकित करने में अपूर्व कलाकार हैं। उनके एक-एक दोहे के चित्र पूर्ण प्रसंग और कथा को लिये हुये होते हैं। पाठक उनमें रम जाता है। प्रेम अथवा वर्णित विषय की पूर्ण कहानी भरी हुई सी होती है। दो एक उदाहरणों से यह विशेषता पूर्ण स्पष्ट हो जायेगी। उनका प्रसिद्ध दोहा 'नहि पराग नहि मधुर मधु' में इतनी शक्ति थी जिस ने 'रति-रंग' में लिख राजा जयसिंह को पुनः चेतना दी, फलस्वरूप कवि को इतना महत्वपूर्ण स्थान मिला। पराग, अमर, कलिका आदि थोड़े से प्राकृतिक उपादनों से वह सरस दोहा तैयार किया जो आज तक सहृदय समाज की जिह्वा पर अंकित है। आपके अधिकतर दोहों में जीवन के आनुसांगिक व्यापारों से भेल खाने वाले खण्ड-चित्रों का ही बँधान बँधा गया है। दूसरा उदाहरण लीजिये :—

डिगत पानि डिगुलात गिरि, लखि सब ब्रज बेहाल ।

कम्प किसोरी दरस तें खरे लजाने लाल ॥

ब्रज में गोवर्धन-धारण का पूर्ण चित्र अंकित है। साथ ही शास्त्रीय उपादान भी विद्यमान हैं। नायक कृष्ण ने अपनी अंगुली पर गोवर्धन उठाया है ब्रज की रक्षा के लिये, परन्तु हाथ हिलने से गिरि भी हिलने ढुलने लगा। इससे सम्पूर्ण ब्रजवासी (लक्षणा से) चिन्ता ग्रस्त हो गये (कहीं पर्वत गिर न जाय) परन्तु कारण क्या था कि नायक ने निकट स्थित नायिका राधा का दर्शन कर लिया था अतः उन्हें कम्प हो गया था। इसी प्रकार की विस्तृत सांग्रो विहारी ने सफलता पूर्वक दोहे जैसे छोटे पात्र में भर दी है। इसी प्रकार का यह भी उदाहरण है :—

सटपटाति सी ससि मुख घूँघट पट भाँकि ।

पावक-भर सी भमकि कैं गई भरोखें भाँकि ॥

आचार्य शुक्ल की यह उक्ति कि 'जिस कवि में कल्पना की समाहार-शक्ति के साथ साथ भाषा की समास-शक्ति जितनी अधिक होगी उतना ही वह कवि मुक्तक-रचना में सफल होगा, इस कथन को पूर्ण सिद्धि विहारी में विद्यमान है। यद्यपि, यह माना कि काल परिस्थित के कारण

एवं संस्कार गत बुद्धि से बिहारी की कामना ने एक सीमित दायरे में ही दौड़ लगाई है। प्राकृतिक निरीक्षण के लिये तो उनके पास समय ही नहीं था क्योंकि वे राजाश्रित कवि थे। इसी से उनकी अनुभूति में काव्य की गूँज भले ही न हो (क्योंकि उन्होंने एक विषय पर एक या दो दोहे ही लिख कर छोड़ दिये हैं और रूपात्मक प्रकृति पर तो नहीं के बराबर) परन्तु उन्हें मानव-प्रकृति का पूर्ण ज्ञान था। शृंगार-वर्णन में तो उनके दोहे अनुभव सिद्ध से प्रतीत होते हैं। शरीरावयवों का चित्रण तो उन्होंने बड़ी कुशलता से किया है। कल्पना के लिये बिहारी किसी भी कवि के क्रृणी नहीं हैं। उन्होंने नख-शिख वर्णन के लिये एवं नायिकाओं के मान वर्णन के लिये जो उपमायें एवं उत्प्रेक्षायें की हैं, वे उनकी कल्पना-शक्ति की परिचायक हैं। एक एक दोहे में कल्पना का इतना समाहार प्रस्तुत किया है कि बुद्धि चकित होती है। दरबारी कवि होने के नाते उनकी कल्पना में और भी चार चाँद लग गये क्योंकि उन्हें तो अपने आश्रयदाता एवं सभासद्वर्ग को आकर्षित करना था। यदि उन में कल्पना-शक्ति का लोभ होता तो संभव है कि उनको जो राज्य में पद मिला हुआ था वह न मिल पाता और उनका यश-शरीर (काव्य) आज तक काल के अन्तराल में विलीन होता सा दिखाई देता। दो चार उदाहरणों से उनकी कल्पना की अतिशयता या 'दूर की सूझ' का अनुभव किया जा सकता है :—

त्यौं त्यौं प्यासेई रहत ज्यौं ज्यौं पियत अघाय ।

सगुन सलोने रूपकी जु न चख-तृषा बुझाय ॥

रूप-दर्शन की प्यास ही कुछ अनोखी होती है कि जितना २ रूप का पान किया जाता है उतना ही और देखने की प्रवृत्ति जागृत होती जाती है (क्योंकि देखने से कुछ सम्बन्ध सूत्र दृढ़ ही होता है) अतः गुण वाले एवं लावण्य युक्त रूप को देखने से आँखें तृप्ति को प्राप्त नहीं हो पातीं। दूसरा इसमें एक वैज्ञानिक कारण यह है कि नमकीन भोज्य खाने के पश्चात् पिपासा तीव्रता को ही प्राप्त होती है। यहाँ पर 'सलोने' शब्द

रखकर बिहारी ने कितना अर्थ-गम्भीर्य उपस्थित कर दिया है। 'मलोने' में श्लेष है। विरोध अलंकार भी अपनी अपूर्व छटा दिखा रहा है। ऊहात्मक दोहों में भी चाहे कल्पना के लिये संबल प्राप्त न होता हो (कारण के लिये) फिर भी वस्तु-चित्रण स्वाभाविक है। नेत्रों से निकले हुये अशु-विन्दु चाहे उरोजों पर पहुँच कर विरह की दाहकता से छनछना कर वाष्प में परिवर्तित हो जाय, फिर भी उसका जो क्रम रखा है वह कितना स्वाभाविक है। देखिये :—

पलनु प्रकटि बरुनीनु बढ़ि नहिं कपोल ठहराति ।

अँसुवा परि छतियाँ छिनुक छनछनाइ छिपि जाति ॥

आखों में अशु दिखाई देते हैं परन्तु बरौनियों में वे गोल गोल विन्दुओं में परिवर्तित होकर कपोलों पर लुढ़क पड़ते हैं। कपोलों पर ढाल होने के कारण वे वहाँ रुकते नहीं वरन् आती के उच्च भाग पर आकर गिर पड़ते हैं। कितना स्वाभाविक क्रम है भाषा में कितनी कसावट है।

बिहारी ने नायिका के कटाक्ष में 'धनुर्विद्या अभ्यास' को सिद्ध कर दिया है। कितनी मनोहारी कल्पना है कि भोंहें तो नायिका की कमान, तुल्य है परन्तु उस पर प्रत्यंचा ही नहीं है फिर भी वह युवकों के चंचल-चित्त को अपने (वंकिम-दृष्टि) कटाक्ष रूपी वाण से बेघ लेती हैं। नायिका को तीरंदाजी में अपूर्व कौशल उपलब्ध हुआ है। शृंगार में अद्भुत का मेल करना बिहारी की कुशलता का ही परिचायक है। अपूर्ण कारण होने हर भी कार्य हो गया अतः विभावना अलंकार भी विद्यमान है।

तिय कित कमनती पढ़ी, बिनु जिह भौह कमान ।

चलचित बेभों चुकति नहिं, बंक बिलोकनि बान ॥

इसी प्रकार से नायिका को तिथि, किशोरावस्था (वयस सन्धि) को सूर्य तथा इन दोनों को पुण्य-काल बताकर ज्योतिष का रूपक उपस्थित करना बिहारी की कल्पना को ही संभव है कि उन्होंने इसने तीरस विषय (नक्षत्र-ज्ञान) को शृंगार में घटित कर दिया है। तीरस विषय को उसका दर्शन कराके पुण्य-फल प्राप्त कराया है।

तिथि तिथि तरनि किसोर वय पुन्य काल सम दौन ।

काहुं पुन्यनि पाइयत, वैस सन्धि संकौन ॥

शब्द कल्पना की समाहार-शक्ति के पश्चात् भाषा की समास-शक्ति को भी देखता है कि बिहारी ने दो पंक्तियों के दोहे में कितने अर्थों की परम्परा भर दी है । दोहा रूप काव्य-रचना के लिये यह आवश्यक रहता है कि कोई भी शब्द अर्थ का न आ जाय और एक अक्षर भी छूट न जाय, नहीं तो शब्द में शिथिलता आ जायेगा । अतः कवि को विशेष रूप से दोहा सूजन में अधिक-पदत्व एवं न्यून-पदत्व तथा अश्लीलत्व, ग्राम्यत्व आदि दोषों की ओर सदैव ध्यान रखना पड़ता है कि कहीं किसी भी गुप्त द्वारा से ये दोष न छुस पड़ें । बिहारी भी सदैव इस ओर सजग रहे हैं । वैसे तो उन्होंने अधिकतर दो या तीन पदों से युक्त समास वाले वाक्यों का ही सूजन किया है परन्तु कुछ लम्बे समास वाले भी दोहे हो गये हैं । क्योंकि उन्हें तो 'नट-कुण्डली' की भाँति 'धोरे आखरों' में 'दीरघ अरथ भरना' है इसीलिये तो वे संस्कृत और प्राकृत के चार चार पंक्तियों के पदों के भावों को हिन्दी के दो पंक्तियों के दोहे में समाहित कर सके हैं तथा उनके एक २ दोहों के अर्थ के लिये अन्य कवियों ने पद, सर्वैया और कुण्डलियाँ, छप्पयों का सूजन किया है । 'अमरुक शतक' के एक श्लोक को वे किस प्रकार दो पंक्तियों में ला सके हैं फिर भी दोहे की चुस्ती एवं गठन में किसी प्रकार का भी शैथिल्य नहीं है । अकरुक का श्लोक है—

शून्यं वासगृहं विलोक्य शयानादुत्थाय किंचिच्चन्द्रनै-

निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पल्युर्मुखम् ।

विस्त्रब्धं परिचुम्ब्य जात पुलकामालोक्य गण्डस्थलीम् ।

लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसिता बाला चिरं चुम्बिता ॥

बिहारी का हस्त-कौशल देखिये :—

मैं मिसहा सोयो समुभिं मुँह चूम्हौ दिंग जाय ।

हँस्यौ खियानी, गर गहयौ, रही गरें लापटाय ॥

अमरुक के संस्कृत शब्द में केवल प्रेम-लीला का वर्णन मात्र है, जो कवि

की उक्ति भी कही जा सकती है जिसमें परिस्थित का वर्णन शब्दों द्वारा प्रकट होता है । पर बिहारी ने उसकी कल्पना पाठकों पर छोड़ दी है । दोहे में चेष्टाओं एवं परिस्थित विशेष की जो भाँकी मिलती है वह अनुभावों से मिश्रित होकर और भी आकर्षित करती है । नायक, नायिका से कुछ विवाद हो जाने के कारण, रुठने का बहाना करके, आखें बन्द कर चारपाई पर शयन की स्थित में लेट रहा, नायिका चूँकि मुख्या है अतः वह यिथ का यह अन्तर सहन न कर सकी । परिणाम स्वरूप एकान्त होने के कारण उसने नायक का मुख (सोता हुआ समझकर) चूम लिया । इस पर नायक हँस पड़ा । नायिका नायक के इस व्यवहार से कुछ चिढ़ सी गई । पुनः दोनों एक दूसरे से आँलिंगन बद्ध हो गये । निम्न दोहे में बिहारी ने दो-दो समास-पदों के द्वारा कितना सुन्दर सांगरूपक उपस्थित किया है ।—

खौरि-पनिच भृकुटि-धनुष बधिक-समर तजि कानि ।

हनत तरुन-मृग तिलक-सर सुरक-भाल भरितानि ॥

मृग्या के सम्पूर्ण उपादान उपस्थित कर दिये हैं । बिहारी ने नायिका को अपनी भाषा की शक्ति पर नक्षत्रों से संयुक्त आकाश बना डाला है । उसकी कामदार सिल्का-सितारे की श्याम वरणों वाली चूँदरी तो तारों युक्त आकाश है तथा उसका मुख चन्द्रमा की समता में खरा उत्तरता है, तो इस प्रकारकी उस रात्रि के समान नायिका को देख कर किस को नेह रूपी निद्रा नहीं दबायगी ।—

चुनरी-श्याम सतार-नभ, मुख ससि की अनुहारि ।

नेह दबावत नीद लो, निरख निसा सी नारि ॥

‘आपने ब्रज-भाषा की प्रकृति के अनुरूप छोटे २ समास ही रखे हैं परन्तु कहीं २ लम्बे २ समास भी हो गये हैं । जैसे,—

‘समरस-समर-सकोच वस-विवस न छाँकि ठहराय ।’

‘बन-बिहार-थाकी-तरुनि-खरे-पालारे जैसा ।’

कहीं कहीं तो संस्कृत पाठ की भाँति अनेक साते लगता है । जैसे

‘भरकत—भाजन सलिल गत ।’ (दो०बी०न०३६४) बिहारी ने अपने दोहों में ध्वन्यात्मकता को विशेष स्थान दिया । वायु के पद—चाप का ध्वनन निम्न दोहे में कैसा भला प्रतीत है :—

रनित भृङ्ग घंटावली, भरत दान मधुनीर ।
मंद मंद आवत चल्यौ, कुंजर कुञ्ज समीर ॥

शीतल मन्द सुगन्धित समीर का स्पर्श प्रतीत होता है । ‘अनुरागी-चित्त’ की गति भी तो महान कलाकार बिहारी ही अङ्कित कर सके हैं कि जितना यह श्याम रंग में डुबकी लगायेगा उतना ही उज्ज्वलता को प्राप्त करेगा । अर्थ चाहे शूँगार परक लगायें अथवा भक्ति-परक दोनों में ही अपनी पूर्ण भाव-व्यंजना है ।

बिहारी की भाषा सम्बन्धी एक और धारणा है जिसके कारण वे इतनी ख्याति अर्जित कर सके । वह यह है कि उन्होंने अपनी काव्य-भाषा को दायरे में नहीं बाँधा है । वरन् अन्य भाषाओं से भी वे सामंजस्य स्थापित किये रहे हैं । वे रासोकार ‘चन्द’ के ‘षट भाषा पुरानं च कुरानं कथितं मया ।’ के पक्षपाती हैं । उनके काव्य में, संस्कृत, प्राकृत अपभूंश तथा उद्दू, फ़ारसी आदि के शब्द अवसरानुकूल ग्रहण किये गये हैं । यहाँ तक कि बुन्देलखण्डी, अबधी आदि अन्य बोलियों के शब्दों की प्रचुरता भी है । देशज शब्दों का भी उन्होंने प्रयोग किया है । भाषावैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से बिहारी ने अपनी भाषा को चाहरदीवारी में बन्द नहीं किया है अपितु विकास में पूर्ण सहयोग प्रदान कराया है । यदि वे ऐसा न करते तो उनका काव्य रुढ़ि बन जाता और पण्डितों एवं शास्त्रीय ज्ञान रखने वालों को ही प्रभावित कर पाता । सामान्य लोग उनके इन ‘रस-सिक्त’ दोहों से ब्रह्मानंद-सहोदर का अनुभव न कर पाते । इस प्रकार से बिहारी की भाषा साहित्यिक ब्रजी है जिसमें कि अन्य बोलियों का मेल है । अबधी के प्रयोग उनमें कई हैं जैसे ‘लीन’, ‘कीन’, ‘दीन’ आदि :—

‘स्तन मन नैन नितम्ब कों बड़ों इजाफा कीन ।’

ब्रजी में लीन्यों, कीन्यों, दीन्यों या लीनों, कीनों, दीनों होना चाहिये। क्योंकि पश्चिमी बोलियों की प्रवृत्ति दीघन्ति होती है तथा पूर्वी की लघ्वन्ति। 'बुन्देल खण्डो' बोली में 'लखबी' 'करिबी' 'पायबी' एवं स्पौं आदि शब्दों का प्रयोग बिहारी ने खूब किया है। 'स्पौं' को लेकर तो विद्वानों ने काफी विवाद उठाया है। जिसका अर्थ है 'संग' या 'साथ'। इसी प्रकार फारसी के 'इजाफा', 'ताफता' आदि शब्दों का एवं देशज शब्द 'गोरी' 'गदकारी' आदि शब्दों का खूब प्रयोग किया है। 'दीन' जी का कथन है कि "बिहारी ने फारसी, अरबी, तुरकी और राजपूतानी शब्दों के सहारे बड़ी अच्छी उक्तियाँ कहीं हैं। अतः जान पड़ता है कि ये बड़े खोजी, सूक्ष्मदर्शी और अनुभवी थे।"

भाषा को शब्दशाली एवं प्रभाव पूर्ण बनाने के लिये जितने भी साधन हो सकते हैं उनका प्रयोग बिहारी ने किया है। कहने के जितने भी ढंग हो सकते हैं बिहारी ने उनको अपनाया है। क्या शब्द शक्तियाँ, क्या मुहावरे, क्या कहावतें, क्या सूक्तियाँ अथवा उदाहरण सभी का उचित प्रयोग हुआ है। एक २ दोहे में कई कई मुहावरे भरे पड़े हैं। देखिये :—

जो चाहो चटक न घटै मैलो होय न मित्त ।

रज राजस न छुवाइये, नेह चीकने चित्त ॥

इसमें चटक न घटना, मित्त का मैला न होना (मित्रता न हटना) चिकना चित्त होना आदि मुहावरे भरे पड़े हैं। इसी प्रकार निम्न दोहे में भी 'कान की पतली होना' बहाऊ बानि' आदि मुहावरे हैं।

खरी पातरी कान की, कौन बहाऊ बानि ।

आक कली न रली करै, अली अली जिय जानि ॥

चूँकि बिहारी लाल जी दरवारी कवि थे अतः उनको अपनी काव्य-भाषा में वह बारीकी लाना संभव न हो सका जोकि एक हाथी दांत के टुकड़े पर महीन बेन-बूटे देखकर घंटों लोग 'बाह-बाह' की दरकार करते रहते हैं। उन्हें तो अपनी भाषा में वह सादगी लानी थी जिससे कि श्रोता लोग सुनते ही उनकी आलौकिक प्रतिभा एवं कल्पना की उड़ान की

प्रशंसा कर सकें। इस दरबारी परिस्थित के कारण ही उन्हें एक-एक दोहे पर ही सन्तोष करना पड़ा है, क्योंकि उन्हें तो नित्य नवीन कल्पना का सूजन करना पड़ता था। इस गूँज की तुलना में विहारी के दोहों से देव, और पद्माकर के कवित सर्वैये आगे बढ़ जाते हैं। फिर भी इन के दोहों की प्रसंशा करते हुये शुक्ल जी ने इन्हें 'रस के छोटे २ छीटि' कहा है और प्रारम्भ से इन के मुक्तक 'एक सजे हुये गुलदस्ते की भाँति' सहदयों को आकर्षित करते रहे हैं।

इतना विवेचन करने के पश्चात् हम यह कह सकते हैं कि विहारी के दोनों प्रकार के दोहे भावानुवादकी प्रधानता रखने वाले, एवं जीवन के व्यंग्य-चत्र देने वाले बन पड़े हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण दोहों में कवि की कल्पना की समाहार-शक्ति और भाषा की समास-शक्ति का समन्वय है क्योंकि बहुत से दोहों के लिये विभिन्न प्रकार की कल्पनायें करनी पड़ती हैं तभी श्र्वश संभव हो पाता है। यही कारण है कि विहारी के बहुत से दोहे सूक्तियाँ होने पर भी सरस हैं और साहित्य में रत्न के समान सदैव दैदीप्यमान रहेंगे।